इकाई 6 औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था : कृषि

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 अंग्रेजों के अधीन वाणिज्यीकरण

6.2.1 कृषि पर निर्यात व्यापार का प्रभाव

6.2.2 वाणिज्यिक फसलों का चुनाव

6.3 वाणिज्यीकरण के प्रभाव

6.3.1 दरिद्रता

6.3.2 अस्थायित्व

6.3.3 सामाजिक संरचना पर प्रभाव

6.4 भू-राजस्व प्रबंधन के आरंभिक प्रयोग

6.5 बंगाल में स्थायी बंदोवस्त

6.5.1 जमींदारों के साथ बंदोबस्त

6.5.2 खेतिहरों की स्थिति

6.5.3 स्थाई बंदोवस्त के प्रभाव

6.6 वैकल्पिक व्यवस्थाओं का उदय

6.6.1 रैयतवाड़ी के तहत कर निर्धारण

6.6.2 मद्रास में रैयतवाड़ी व्यवस्था लागू करना

6.6.3 रैयतवाड़ी : सिद्धांत और व्यवहार

6.6.4 बंबई में रैयतवाड़ी बंदोबस्त

6.6.5 मद्रास और बम्बई में रैयतवाड़ी व्यवस्था के प्रभाव

6.7 अन्य वैकल्पिक बंदोबस्त : महलवाड़ी व्यवस्था

6.7.1 महलवाड़ी : सिद्धांत और व्यवहार

6.7.2 महलवाड़ी बंदोबस्त के प्रभाव

6.8 सारांश

6.9 शब्दावली

6.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

6.0 उद्देश्य

ब्रिटिश शासन के प्रथम चरण या उन्नीसवीं सदी के मध्य तक के दौरान भारत में कृषि के वाणिज्यीकरण का विश्लेषण इस इकाई में किया गया है। अंग्रेजों के अधीन वाणिज्यीकरण की जिस प्रक्रिया का प्रारंभ हुआ था उसके भारतीय जीवन पर दूरगामी परिणाम हुए, तब जो बहुत सी समस्याएँ उत्पन्न हुई थी वे आज भी हमारे साथ हैं। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आपको ज्ञान हो जाएगा :

- ''वाणिज्यीकरण'' शब्द के अर्थ का,
- उन विभिन्न तरीकों के विषय में जिनके अंतर्गत वाणिज्यिक कृषि को संगठित किया गया, और

BHIC-134 (HINDI)_NEW SETTING.indd 65 24-03-2021 11:47:19

- भारतीय अर्थव्यवस्था पर और भारतीय किसानों पर इस प्रक्रिया के प्रभावों के बारे में।

इस इकाई में हम 1857 तक भारत के विभिन्न भागों में अंग्रेजों द्वारा किए गए भू-राजस्व बंदोबस्तों का भी अध्ययन करेंगे?

इस इकाई को पढ़ने बाद आपः

- ''राजस्व बंदोबस्त'' का अर्थ बता सकेंगे,
- विभिन्न ''बंदोबस्तों'' को लागू करने के पीछे अंग्रेजों के निहित उद्देश्यों का वर्णन कर सकेंगे,
- बंदोबस्त के तीन प्रमुख प्रकारों की महत्वपूर्ण विशेषताओं पर प्रकाश डाल सकेंगे, और
- इनमें से प्रत्येक महत्वपूर्ण ग्रामीण अर्थव्यवस्था और देहातों में विभिन्न वर्गों में संबंध पर पड़ने वाले प्रभावों को रेखांकित कर सकेंगे।

6.1 प्रस्तावना

बाजार हम सबके लिए एक परिचित संस्था हैं। आप प्रतिदिन बाजार से कुछ खरीदने के लिए जाते होंगे और कभी-कभी कुछ बेचने के लिए भी। ऐसा इसलिए है क्योंकि हम एक व्यवसायिक अर्थव्यवस्था में रहते हैं। लोग कार्य करते हैं और पैसा कमाते हैं या उत्पादन करते हैं और बेचते हैं क्योंकि वे धन प्राप्त करते हैं और इस धन से वे बाजार से उन वस्तुओं को खरीद सकते हैं जिनको वे प्राप्त करना चाहते हैं। सभी प्रकार की वस्तुओं को बाजार में लाया जा सकता है – ये बहुत छोटी वस्तुओं जैसे कि सिगरेट चीनी से लेकर बहुत महंगी चीजें जैसे कि घर या जमीन हो सकती है। यहाँ तक कि श्रम के लिए भी बाजार है, लेकिन व्यक्तिगत श्रम बाजार भी उपलब्ध है, निश्चित रूप से आप उन जगहों के विषय में सोच रहे होंगे जहाँ से आप अपने लिए एक बढ़ई या कुली को काम करने के लिए किराए पर ला सकते हैं।

एक व्यवसायिक या एक बाजार अर्थव्यवस्था के अंतर्गत आर्थिक गतिविधियों का निर्धारण बाजार के द्वारा किया जाता है। इस कथन का क्या तात्पर्य है? इसका एक यह तात्पर्य कि लोग जैसी इच्छा करते हैं वैसी ही वस्तुओं के सस्ती खरीदने और महँगी बेचने के लिए प्रयास कर सकते हैं। इसका यह भी अर्थ है कि यदि दाम अधिक हैं तब वे अधिक उत्पादन करेंगे और यदि दाम कम हैं तब वे कम उत्पादन करेंगे। मजदूर उन स्थानों को छोड़ने का प्रयास करेंगे जहाँ पर उनको कम मजदूरी प्राप्त होती है और उन स्थानों पर जायेंगे जहाँ पर उनको अधिक मजदूरी प्राप्त होगी। लोग नगर में उन स्थानों की तलाश करते हैं जहाँ पर वे सस्ता घर खरीद सकते हैं या जहाँ उनको कम किराया देना पड़े। इन सभी तरीकों में, आर्थिक गतिविधियों का निर्देशन बाजार के दामों द्वारा किया गया है। इस इकाई में हम आपका परिचय अंग्रेजी शासन के अधीन भारतीय कृषि के वाणिज्यीकरण की प्रक्रिया और भारतीय अर्थव्यवस्था तथा समाज पर इसके प्रभावों से करायेंगे।

जिस समय कृषि का वाणिज्यीकरण किया जाता है तब बहुत से भिन्न-भिन्न बाजार भिन्न समयों पर सक्रिय हो सकते हैं। हम इन बाज़ारों की निम्नलिखित अनुमानित सूची बनाने का प्रयास करेंगे :

1) **उत्पाद बाजार** : इस प्रकार के बाजारों में गेहूँ या चावल या ऊन या घी जैसे बहुत से कृषि उत्पादनों को बेचा जाने लगा।
2) **अंतर्गामी बाजार** : कृषि में उत्पादन करने वाली वस्तुएँ जैसे औजार, बीज, रासायनिक खाद, बैल इत्यादि की बिक्री शुरू हो गई।
3) **श्रम बाजार** : इस तरह के वे बाजार होते हैं जहाँ पर मजदूर स्वयं को पैसे के लिए मजदूरी पर उपलब्ध कराते हैं।
4) **भूमि बाजार** : इस तरह के बाजारों में किसान भूमि को बेचते या खरीदते हैं, या पैसे के लिए इसको किराये पर देते हैं।

BHIC-134 (HINDI)_NEW SETTING.indd 66 24-03-2021 11:47:19

5) **स्वयं धन के लिए बाजार** : जैसे-जैसे वाणिज्यीकरण का विकास होता है, किसान को अक्सर धन की आवश्यकता होती है। यह धन करों या किरायों की नकद अदायगी में बीज या बैलों की खरीद में या यहाँ तक कि स्वयं एवं अपने परिवारों के पोषण में काम आ सकता है। इसी प्रक्रिया के कारण ऋण बाजार का विकास होता है और ऋण बाजार का आधार निश्चय ही उस पर ब्याज के रूप में होने वाली आमदनी होती है।

ब्रिटिश सरकार ने भारत के कई हिस्सों पर अधिकार जमाया और कृषि पर भारी कर लगाए। इन करों के निर्धारण और वसूली के लिए उन्होंने कई प्रकार के भू-राजस्व बंदोबस्त कायम किए।

इस प्रकार की व्यवस्था के लिए दो काम करने पड़ते हैं, पहले कर का निर्धारण किया जाता है और आकलन द्वारा यह निर्धारित किया जा सकता है कि कितनी राशि किस रूप में प्राप्त की जाएगी और उसके बाद यह तय किया जाता है कि इस कर की अदायगी कौन करेगा। इसके लिए ऐसे व्यक्ति का चुनाव किया जाता है, जिसका भूमि पर नियंत्रण हो और वह इससे जुड़ा हो, अन्यथा वह कुछ अदा करने में असमर्थ होगा। अतः जब सरकार कर अदायगी का भार किसी व्यक्ति पर सौंपती है, तो वह यह निश्चित कर लेती है कि इस व्यक्ति का भूमि पर किसी न किसी प्रकार अधिकार है, वह जिससे आय अर्जित करता है, जिसमें से वह कर की अदायगी कर सकता है। अगर वह भूमि से कुछ आय नहीं प्राप्त कर सकेगा तो वह स्पष्टतः सरकार को भी कुछ नहीं दे पाएगा। सरकार जब यह तय कर लेती है कि कैसे भू-कर (या भू-राजस्व) का निर्धारण किया जाएगा और कौन इसकी अदायगी करेगा और कर के रूप में किस चीज का भुगतान होगा, तब भू-राजस्व बंदोबस्त का महत्वपूर्ण काम समाप्त हो जाता है। इस इकाई में हमने भारत में ब्रिटिशों द्वारा स्थापित विभिन्न भू-राजस्व के बंदोबस्त, उनकी विशेषताओं और भारतीय अर्थव्यवस्था और समाज पर पड़ने वाले उनके प्रभावों की चर्चा की है।

6.2 अंग्रेजों के अधीन वाणिज्यीकरण

मुगल साम्राज्य के पतन का जिन नयी शक्तियों ने लाभ उठाया उनमें ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी भी थी। इसने दक्षिण भारत के क्षेत्रों और पूरब में बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा के संपन्न प्रदेशों को प्राप्त कर लिया। ये क्षेत्र कृषि में संपन्न होते हुए व्यापार एवं दस्तकारी में काफी विकसित थे। कंपनी के साथ-साथ इसके सेवकों एवं कर्मचारियों ने इस विजय के माध्यम से स्वयं को संपन्न बनाने की योजना बनायी। इन्होंने जो तरीके अपनाए उन्हीं के कारण उनके अधीन अपने विशेष गुणों के साथ वाणिज्यीकरण हुआ।

6.2.1 कृषि पर निर्यात व्यापार का प्रभाव

कंपनी ने महसूस किया कि उसको भारत से निर्यात करने के अन्य प्रकार के सामानों को प्रोत्साहित करने की आवश्यकता होगी, कृषि उत्पादनों का निर्यात सुरक्षित तरीका था। इन उत्पादनों की अंग्रेजी माल के साथ कोई प्रतियोगिता न होगी तथा ये अंग्रेजी उद्योग-धंधों के लिए कच्चे माल का काम भी करेंगे। इस सामरिक नीति का अनुसरण रेशम के मामले में 1770 के दशक से किया गया। लेकिन ब्रिटेन में तेजी के साथ होते औद्योगीकरण से कंपनी को निर्यात करना और भी कठिन हो गया। फिर भी, नजराने के स्वरूप में ब्रिटेन जाने वाली भारतीय धनराशि को 1880 के दशक से चीन के माध्यम से भेजना जाने लगा। ब्रिटेन चीन से काफी बड़ी तादाद में चाय का आयात करता था और उसको चाँदी (बुलियन) में इसकी अदायगी करनी होती थी, क्योंकि चीनी पश्चिमी सामान को खरीदना नहीं चाहते थे। परंतु चीनी भारतीय हाथी दाँत की चीजें, कच्ची रुई तथा बाद में अफीम को खरीदते थे। अगर अंग्रेज इस व्यापार पर नियंत्रण कर लें, तब उनको चीन को चाँदी भेजने की आवश्यकता नहीं होगी। चीन द्वारा चाय को भारतीय उत्पादकों के विनिमय के द्वारा खरीदा जा सकता था और इन भारतीय उत्पादकों को अंग्रेज प्राप्त कर ही रहे थे। इस व्यवस्था को ''त्रिकोणीय व्यापार'' के नाम से जाना जाता था तथा यह तीन केंद्रों कलकत्ता, कैंटन एवं लंदन से जुड़ा था। संपत्ति प्रथम केंद्रों से परिभ्रमण करती हुई कंपनी के खजाने में तीसरे केंद्र लंदन जाकर जमा हो जाती थी।

BHIC-134 (HINDI)_NEW SETTING.indd 67 24-03-2021 11:47:19

इसलिए यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कंपनी की रुचि कृषि के एक नियंत्रित वाणिज्यीकरण में थी। जिससे कि चीनी या पश्चिमी बाजार के लिए उपभोग वस्तुओं को उपलब्ध कराया जा सके।

6.2.2 वाणिज्यिक फसलों का चुनाव

कंपनी ने जिन फसलों पर अपना विशेष ध्यान केंद्रित किया उनमें नील, कच्ची रेशम, कपास, अफीम, काली मिर्च और उन्नीसवीं सदी में चाय तथा चीनी थी। इनमें से कच्ची रेशम का उपयोग ब्रिटेन के बुनकरों द्वारा किया जाता था क्योंकि वहाँ पर रेशम का उत्पादन नहीं किया जा सकता था। यही बात कपास के लिए भी सत्य थी और इसको चीन को भी बेचा जा सकता था। अफीम की निश्चय ही चीन को तस्करी होती क्योंकि चीन में इसके आयात पर प्रतिबंध लगा हुआ था। पश्चिम में सूती कपड़ों की रंगाई के लिए नील की आवश्यकता थी। 1840 के दशक से चाय की खेती का प्रारंभ असम में किया गया जिससे कि ब्रिटेन इसकी आपूर्ति को नियंत्रित कर सके और उसको चाय के लिए चीन पर निर्भर न रहना पड़े। इनमें से किसी भी वस्तु की ब्रिटेन के उत्पादन के साथ कोई प्रतिद्वंद्विता नहीं थी। इन सभी वस्तुओं की एक और विशेषता थी। ये अपने वजन की तुलना में काफी मूल्यवान थी। कहने का तात्पर्य यह है कि वजन के हिसाब अर्थात् प्रति किलोग्राम इनका मूल्य काफी अधिक था।

हमें यहाँ पर एक अन्य बात को याद रखना चाहिए कि इस सभी सामान की ढुलाई गाड़ियों से होती थी जिनको बैल या घोड़े खींचते थे तथा समुद्र में जहाजों के द्वारा इन्हें भेजा जाता था। भारत से यूरोप तक पहुँचने में एक जहाज लगभग चार माह का समय लेता था। उन दिनों के जहाज आधुनिक समुद्री जहाजों की अपेक्षा काफी कम भार को ले जाते थे। इसलिए ढुलाई पर काफी खर्च आता था। अगर किसी सस्ती तथा काफी वजन की वस्तु को उन दिनों समुद्री जहाजों से ले जाना पड़ता था तब निश्चय ही जहाज का भाड़ा अदा करने के बाद वस्तु काफी महँगी हो जाती थी। इससे कंपनी को उनका व्यापार करने में नुकसान होता। इसलिए उत्पादों को उनके वजन के संदर्भ में लाभदायक बनाना आवश्यक था जिससे कि लाभांश ढुलाई पर आने वाले खर्च में ही समाप्त न हो जाए।

6.3 वाणिज्यीकरण के प्रभाव

हम देख चुके हैं कि किस प्रकार से व्यवसायिक फसलों का उत्पादन हुआ और किस ढंग से उनका विक्रय किया गया। यह स्पष्ट हो चुका होगा कि प्रत्येक फसल दूसरी से किसी न किसी रूप में भिन्न थी। इसी प्रकार से वाणिज्यीकरण के प्रभाव एक समय से दूसरे समय में, एक स्थान से दूसरे स्थान पर और एक फसल से दूसरी फसल पर निश्चय ही भिन्न-भिन्न होंगे। हम यह आशा नहीं कर सकते हैं कि वे सभी जगहों पर बिल्कुल एक समान होंगे फिर भी, कुछ निश्चित समान विशेषताएँ और कुछ समान निश्चित प्रभाव विद्यमान होते ही हैं। इसी आधार पर इस भाग में विवेचन किया जाएगा।

6.3.1 दरिद्रता

हम अपना प्रारंभ भारत की संपूर्ण अर्थव्यवस्था से करेंगे। आपको याद होगा कि अंग्रेजों का उद्देश्य यूरोप को निर्यात करने वाली वस्तुओं को उत्पादन करना था। ऐसा करने से लंदन स्थित कंपनी के खजाने में धन एकत्रित किया जा सकता था। व्यक्तिगत अंग्रेज व्यापारी भी धन को वापस लंदन भेजना चाहते थे जिससे कि अंततः रिटायर्ड होने पर अपना जीवन आराम से ब्रिटेन में व्यतीत कर सकें। इसलिए निर्यात ने अनिवार्यतः भारतीय स्रोतों को धन रूप में भारत से बाहर भेजने का कार्य किया। यही वह उपाय था जिसने भारतीय ''नज़राने'' को ब्रिटेन को हस्तांतरित किया। इन निर्यातों के बदले में भारत को कोई आयात प्राप्त नहीं होता था। स्पष्टतः इस हस्तांतरण ने भारत को दरिद्र बनाया। इस प्रकार व्यवसायिक फसलों की वृद्धि एवं निर्यात ने भारत को धनी करने के स्थान पर दरिद्र ही किया।

6.3.2 अस्थायित्व

भारतीय कृषि पर बहुत से संकट आते रहे। सूखा, बाढ़ और अन्य प्राकृतिक आपदाओं ने फसलों को नष्ट एवं किसानों को बरबाद किया। लेकिन व्यवसायिक कृषि ने नए प्रकार के

खतरों को उजागर किया। अब फसलों की आपूर्ति दूर के बाजारों को हो रही थी। यदि पश्चिम भारतीय गन्ने के अच्छे दाम थे पर वे कलकता में कम हो सकते थे तथा आजमगढ़ में चीनी फैक्ट्रियाँ उन दामों से भी कम दे सकती थी जिसका उन्होंने वायदा किया। अगर शिकायत की जाती तो वे किसानों के साथ दुराचार करते।

इसी भाँति 1816 के बाद से मध्य प्रदेश के उत्तरी भाग बुंदेलखंड क्षेत्र में चीन के बाजार के लिए कपास का उत्पादन होने लगा था। अंग्रेज अधिकारियों ने दावा किया कि अब यह क्षेत्र संपन्न होने लगा है अतः इस क्षेत्र में भूमि करों में वृद्धि की जाए। लेकिन 1830 के दशक में निर्यात घटने लगा तथा कपास के दामों में गिरावट आयी परंतु भूमि कर पहले के बराबर जारी रहा। फलस्वरूप जमींदार एवं किसान दोनों दरिद्र होने लगे, भूमि पर खेतीबाड़ी बंद हो गई और अंततः इस क्षेत्र के किसानों ने 1842 का विद्रोह कर दिया जिसको बुंदेला विद्रोह के नाम से जाना जाता है।

1830 के वर्षों में इसी प्रकार की समस्या का सामना उत्तर प्रदेश ने भी किया। कपास और नील के दामों में गिरावट आयी। इतिहासकार प्रो. सिद्दीकी ने इसका विवरण करते हुए लिखा है ''किसान अपनी जमीनों को त्याग रहे थे, जमींदारों को नुकसान हो रहा था। महाजन बरबाद हो गए थे क्योंकि उन्होंने जो ऋण दिए थे उनको अदा न किया जा सका, उनमें बहुतों ने अब किसानों को ऋण देने से इंकार कर दिया। भूमि का अवमूल्यन हुआ। सरकार को ऐसे बहुत से मामलों की सूचना दी गई जिनके अनुसार जमीन को बेचने का प्रयास किया गया किंतु कोई खरीदने के लिए तैयार नहीं हुआ''। इसी समय बंगाल के ग्रामीण अंचलों की भी यही स्थिति थी।

सिक्के का एक दूसरा पहलू भी था। 1830 एवं 1833 के बीच में वे सभी कंपनियाँ जो निर्यात व्यापार से जुड़ी थी तथा जो बंगाल, बिहार और उत्तर प्रदेश में व्यवसायिक कृषि को वित्तीय सहायता उपलब्ध कराती थी, दिवालिया हो गई। कारण यह था कि दाम गिर जाने के बावजूद भी वे नील को ब्रिटेन भेज रही थी, क्योंकि वे अपने धन को भारत से बाहर निकालना चाहती थी। सरकार ने चाँदी के सिक्कों को ब्रिटेन भेजकर स्थिति को और भी गंभीर बना दिया और भारत में धन के अभाव का संकट पैदा हो गया। जिन व्यापारियों ने निर्यात फसलों के उत्पादन हेतु उधार लिया था, वे ऋणों की अदायगी न कर सके और दिवालिया हो गए। अंत में निश्चय ही इस संकट का भयंकर शिकार किसान हुए क्योंकि इन किसानों को ताकत के बल पर तथा दबाव में व्यवसायिक फसलों को उगाने के लिए बाध्य किया गया था। लंदन में मूल्यों में गिरावट भारतीय कृषकों के लिए बरबादी का पैगाम लेकर आयी। कहने का तात्पर्य यह है कि कृषि के वाणिज्यीकरण ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था में अस्थिरता के एक नए तत्व को जोड़ दिया।

6.3.3 सामाजिक संरचना पर प्रभाव

कभी-कभी ऐसा विश्वास किया जाता है कि वाणिज्यीकरण के अंतर्गत किसानों में निश्चित रूप से असमानता बढ़ती है। कुछ किसान संपन्न हो सकते हैं और वे नकद मजदूरी पर मजदूरों को रखेंगे, कुछ को विवश होकर अपनी जमीनों को छोड़कर मजदूर बनना पड़ेगा। ऐसा तभी हो सकता है जब बाजार को स्वतंत्र रूप से विकसित होने दिया जाए और स्वतंत्र रूप से कार्य करने दिया जाए। विशेषरूप से यदि भूमि बाजार इस प्रकार के कार्य करते तब यह अच्छा ही होता। लेकिन जिस वाणिज्यीकरण का हम अध्ययन कर रहे हैं उसके विषय में यह घटित न हो सका। अनवरत रूप से किए जाने वाले दमन एवं राज्य शक्ति ने बाजारों के स्वतंत्र विकास को अवरुद्ध और पूर्ण श्रम बाजार को पैदा होने से रोका। इस सबके बावजूद व्यवसायिक फसलों के उत्पादन ने छोटे किसानों की उत्पादन व्यवस्था को तेजी से धराशायी कर उनको दरिद्र बना दिया। अपने छोटे-छोटे खेतों में इन किसानों के द्वारा अपने परिवारजनों की सहायता से उत्पादन किया जाता था। परन्तु नील की खेती कराने वाले मालिकों और अफीम के एजेंटों ने इनको अपने इन छोटे खेतों पर व्यवसायिक फसलों को उगाने के लिए बाध्य किया जिससे उनको बहुत कम आमदनी होती थी या बिल्कुल ही नहीं। किसान को दरिद्र बना दिया गया था। लेकिन न तो उत्पादन के तरीकों और न ही उत्पादन के संगठन को बदला गया। यूरोपीय व्यापारियों को इन छोटे किसानों

BHIC-134 (HINDI)_NEW SETTING.indd 69 24-03-2021 11:47:19

के द्वारा इन व्यवसायिक फसलों को पैदा कराके अधिक मुनाफा हुआ और इसलिए उन्होंने इस कार्य के लिए नकद मजदूरी पर मजदूरों को नहीं रखा।

बोध प्रश्न-1

1) क्या बाजार हमेशा रहे हैं?

....

....

....

2) ब्रिटिश ने भारतीय कृषि के वाणिज्यीकरण की योजना क्यों बनाई? 60 शब्दों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

3) क्या वाणिज्यीकरण किसानों के लिए लाभदायक था? 60 शब्दों में उत्तर दें।

....

....

....

6.4 भू-राजस्व प्रबंधन के आरंभिक प्रयोग

1757 में बंगाल पर अधिकार जमाने के बाद अंग्रेजों ने बंगाल के नवाबों द्वारा स्थापित प्रशासन को बरकरार रखा, बस इसका उपयोग उन्होंने अपने लिए अधिक से अधिक धन उगाहने के लिए किया। कपंनी के कर्मचारियों की लोलुपता और भ्रष्टाचार और प्रशासन में उनके लगातार हस्तक्षेप के कारण मामला बिल्कुल अव्यवस्थित हो गया और यह 1769-70 के अकाल का एक महत्वपूर्ण कारण बना। इसमें बंगाल की एक तिहाई जनता अकाल का ग्रास बन गयी।

अतः 1772 से ''राजस्व के ठेके''(फार्मिंग सिस्टम) के नाम से एक नयी व्यवस्था लागू की गयी। इस व्यवस्था के तहत सरकार ठेके पर भू-राजस्व का जिम्मा किसी व्यक्ति को सौंप देती थी। जो ठेकदार सबसे ज्यादा बोली लगाता था, उसे एक जिले या प्रखंड से कुछ समय के लिए राजस्व वसूलने का अधिकार दे दिया जाता था। निश्चित रूप से ये ठेकेदार (उन दिनों इन्हें ''फार्मर'' कहा जाता था) अपने ठेके की अवधि में अधिक से अधिक लगान वसूलने की कोशिश करते थे, इस बात से उन्हें कोई सरोकार नहीं था कि लोग इससे कंगाल हो जायेंगे और अगले साल इसका असर उत्पादन पर पड़ेगा। उन्हें केवल मुनाफा कमाने से मतलब था। इस व्यवस्था के कारण शोषण और अत्याचार बढ़ा। बाद में कुछ ठेकेदारों ने यह महसूस किया कि उन्होंने बोली ज्यादा बढ़ाकर लगा दी है और इस शोषण और अत्याचार के बावजूद वे इतनी बड़ी रकम नहीं जुटा सकते हैं। अंततः इस व्यवस्था की परिणति भ्रष्टाचार में हुई। जैसा कि आज भी सरकारी ठेकों में होता है, सरकारी कर्मचारी अपने दोस्तों और चहेतों को आसान दर पर ठेका दिलवाया करते थे और कर्मचारी अपने नाम से ''बेनामी'' ठेका ले लेते थे, इससे सरकार को घाटा होता था। 1786 में लार्ड कार्नवालिस को प्रशासन को भ्रष्टाचार से मुक्त करने और पुनर्संगठित करने के लिए भारत भेजा गया।

6.5 बंगाल में स्थाई बंदोस्त

कार्नवालिस ने भारत आकर महसूस किया कि वर्तमान व्यवस्था देश को दरिद्र बना रही थी और यहाँ कृषि पतनोन्मुख थी, इसके अलावा इसका उत्पादन इतना कम था कि यह कंपनी की जरूरतों को पूरा नहीं कर सकती थी। कंपनी कृषि से बृहद् और नियमित

अधिशेष की आशा करती थी। कार्लवानिस ने यह भी महसूस किया कि कंपनी भारत से जिन वस्तुओं को यूरोप में बाजारों में बेचने के लिए ले जाना चाहती थी, उनके उत्पादन में भी कमी आयी, मसलन रेशम, सूत आदि क्योंकि ये भी कृषि पर ही आधारित थे। जब कृषि पतनोन्मुख हो, तो हस्तशिल्प उद्योग कभी भी पनप नहीं सकता। लंदन में बैठे अधिकारियों ओर कार्नवालिस ने यह महसूस किया कि कराधान की अनियमितता और अव्यवस्था के कारण ही भ्रष्टाचार भी है और शोषण भी।

अतः अब भू-कर को स्थाई तौर पर निर्धारित करने का निर्णय लिया गया, सरकार ने आश्वासन दिया कि वह भविष्य में कभी कर नहीं बढ़ाएगी। इस आश्वासन से कई प्रकार के परिणामों की आशा की गयी। यह भ्रष्टाचार को कम करेगा और पदाधिकारियों द्वारा मनमाने ढंग से करारोपण पर रोक लगाएगा। इसके अलावा उत्पादन में वृद्धि के बावजूद राज्य अतिरिक्त माँग नहीं करेगा, इससे भू-स्वामी पर भूमि की उपज बढ़ाने के लिए धन निवेशित करेंगे, क्योंकि मुनाफे का पूरा हिस्सा उनका होगा। इससे उत्पादन और व्यापार में वृद्धि होगी और सरकार को भी नियमित रूप से कर मिलता रहेगा। अंततः कार्नवालिस का यह मानना था कि भूमि कर स्थाई होने के बावजूद, सरकार अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए व्यापार और वाणिज्य पर कभी भी कर बढ़ा सकती थी, वस्तुतः भूमि कर का निर्धारण भी काफी अधिक दर पर किया गया था। भूमि कर की कुल रकम 2 करोड़ 65 लाख रुपए तय की गयी थी।

6.5.1 जमींदारों के साथ बंदोबस्त

इस प्रकार हमने देखा कि भू-राजस्व स्थाई तौर पर निर्धारित कर दिया गया। पर सवाल यह था कि यह किसके माध्यम से वसूला जाए? बंगाल के नवाब जमींदारों के मार्फत कर वसूला करते थे। इन जमींदारों के अधिकार में काफी बड़ा इलाका होता था, कभी-कभी पूरा जिला इनके नियंत्रण में होता था। उनके पास अपनी सेनाएँ होती थीं और उन्हें राजा कहा जाता था। पर कुछ ऐसे छोटे इलाके भी थे, जहाँ से लगान की वसूली सीधे या किसी बड़े जमींदार के माध्यम से की जाती थी। खेती का काम किसान करते थे और वे प्रत्येक उपमंडल (या परगना) में निर्धारित स्थाई प्रथागत दर से कर का भुगतान जमींदार को करते थे। शोषक जमींदार नियमित भू-राजस्व दरों के अतिरिक्त भी कर लगा देते थे। इस प्रकार के कर को ''अबवाब'' कहा जाता था।

1790 तक ब्रिटिश शासन ने इस व्यवस्था को अस्त-व्यस्त कर दिया। कुछ जमींदारों बरकरार रखा गया और कुछ का स्थान ठेकेदारों या पदाधिकारियों ने ले लिया। पुरानी प्रथागत दरों को नजरअंदाज किया गया और राजस्व बढ़ाने के लिए सभी तरह के गैर कानूनी कार्य किए गए। कार्नवालिस के आगमन के पूर्व पूर्णतः अव्यवस्था का माहौल था। नया गवर्नर जनरल ब्रिटेन के भूमिपति कुलीन वर्ग का सदस्य था। अतः वह जमींदारों को जमीन की मिल्कियत देने के पक्ष में था। उसके दिमाग में अंग्रेज भूमिपतियों का चित्र था, जिन्होंने खेतों को विकसित किया था। इसके अतिरिक्त राजस्व निर्धारण के लिए सरकार के पास अन्य किसी वर्ग के साथ बंदोबस्त करना कठिन था।

इस स्थिति को समझने के लिए आपको यह जानना जरूरी है कि उस समय बिहार, बंगाल और उड़ीशा को मिलाकर कुल चालीस से पचाल लाख किसान परिवार खेती में कार्यरत थे। उनसे सीधे तौर पर कर वसूली के लिए उनके खेतों का पूरा ब्यौरा तैयार करना पड़ता और उस आधार पर कर का निर्धारण करना पड़ता था। इसके लिए कई वर्ष लगाने पड़ते और काफी संख्या में कर्मचारियों की नियुक्ति करनी पड़ती। इससे भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिलता। स्पष्ट रूप से कुछ बड़े जमींदारों से राजस्व वसूलना ज्यादा सरल था और बिहार तथा बंगाल में यही व्यवस्था 1793 में स्थायी बंदोबस्त के तहत की गयी। सभी खेतिहर इलाके विभिन्न जमींदारियों में बंट गए। जमींदार को एक निर्धारित कर की अदायगी करनी होती थी, जब तक वह अपना कार्य-कुशलता से संपन्न करता रहता था तब तक वह अपनी जमींदारी का मालिक होता था। वह इसे बेच सकता था, गिरवी रख सकता था या इसे हस्तांतरित कर सकता था। काल-क्रम में उसके वंशज जमींदारी उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त करते थे। पर, अगर जमींदार निर्धारित कर अदा करने में असफल रहता था, तो सरकार उसकी जमींदारी को दखल कर लेती थी और उसे नीलाम कर देती थी। इस प्रकार सभी अधिकार नए मालिक को मिल जाते थे।

BHIC-134 (HINDI)_NEW SETTING.indd 71 24-03-2021 11:47:20

6.5.2 खेतिहरों की स्थिति

खेती का काम लाखों किसान किया करते थे, जो अब जमींदार के काश्तकार मात्र रह गए थे। कार्नवालिस ने यह निर्णय भी जारी किया था कि जमींदार किसानों से लिखित समझौता (पट्टा) करेंगे और इसमें किसानों द्वारा दिए जाने वाले राजस्व का हवाला होगा। उसका विश्वास था कि इससे किसानों पर होने वाले शोषण में कमी आएगी। व्यावहारिक तौर पर, वस्तुतः किसी किसान को पट्टा नहीं दिया गया और किसान पूर्वतः जमींदारों की दया पर आश्रित थे।

यह स्थिति आकस्मिक नहीं थी। जैसा कि हमने पहले भी जिक्र किया है कि स्थाई बंदोबस्त में कर-निर्धारण बहुत ज्यादा दर पर किया गया था। यह निर्धारण बहुत ज्यादा था और इससे शोषण को बढ़ावा मिला। एक जानकार पदाधिकारी जौन शोर के अनुसार, यदि किसी भूमि से 100 रुपए का अनाज पैदा होता था, तो उसमें से 45 रुपए सरकारी खजाने में और 15 रुपए जमींदार के पास चले जाते थे। किसान के पास मात्र 40 रुपए बचते थे। इस प्रकार की भारी रकम दमनात्मक तरीके से ही वसूली जा सकती थी। अगर जमींदारों को किसानों का शोषण करने का अधिकार न दिया जाता तो वे सरकार की माँग की पूर्ति नहीं कर पाते। 1793, 1799 और 1812 में बने नियमों के तहत किसानों द्वारा रकम भुगतान न किए जाने की स्थिति में जमींदार किसान की जमीन जब्त कर सकता था। ऐसा करने के लिए उसे किसी न्यायालय की शरण में जाने की जरूरत नहीं थी। यह दमन का एक वैध तरीका था। इसके अतिरिक्त जमींदार किसानों द्वारा भुगतान न किए जाने पर अनेक अवैध तरीके भी अपनाते थे मसलन किसानों को ताले में बंद कर देना, उन्हें पीटना आदि। अतः स्थाई व्यवस्था का तात्कालिक प्रभाव किसानों को दयनीय स्थिति के रूप में सामने आया। उनकी स्थिति पहले से भी खराब हो गयी। दूसरी तरफ ब्रिटिश सरकार और जमींदारों को इस व्यवस्था से खूब फायदा हुआ।

6.5.3 स्थाई बंदोबस्त के प्रभाव

ऊपर से देखने में यह लगता है कि यह व्यवस्था जमींदारों के हक में काफी मजबूत थी। पर हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि अब उन्हें प्रत्येक वर्ष एक निश्चित तारीख तक एक निश्चित रकम सरकारी खजाने में जमा करवा देनी पड़ती थी और इसमें चूकने पर जमींदारी की नीलामी हो जाती थी। इसके अतिरिक्त कुछ जमींदारियों की दर इतनी ज्यादा निर्धारित कर दी गयी थी कि बाढ़, सूखे तथा अन्य विपत्ति के कारण उनके पास कुछ भी नहीं बच पाता था। अतः परिणामस्वरूप स्थाई बंदोबस्त के तुरंत बाद अनेक जमींदारों की जमींदारी छीन ली गयी और ये जमींदारियाँ कई दशकों तक बिकती रहीं। अकेले बंगाल में 1794 और 1819 के बीच जमींदारों की भूमि का 68 प्रतिशत बेचा गया। व्यापारियों, सरकारी पदाधिकारियों और अन्य जमींदारों ने ये जमीनें खरीदी। नए खरीददारों ने मुनाफा कमाने के लिए किसानों से अधिक रकम वसूलनी शुरू की। राजा राममोहन राय ने टिप्पणी की हैः

''1793 से स्थाई बंदोबस्त के तहत भूमिपतियों ने लगान बढ़ाने की हर संभव कोशिश की है और इसके लिए अपनी संपूर्ण शक्ति का उपयोग किया है।'' इसके बावजूद कई जमींदार ब्रिटिश सरकार द्वारा निर्धारित रकम को अदा करने में दिक्कत महसूस करते थे। एक ऐसे ही जमींदार, बर्दवान के राजा ने अपनी जमींदारी को कई टुकड़ों में बाँट दिया था, इन्हें पटनी ताल्लुक कहते थे। इन सभी इलाकों को एक पटनीदार के हवाले किया गया, जो एक नियत राशि देने का वचन देता था। अगर वह रकम अदा करने में असफल रहता था, तो उसकी पटनी जब्त कर बेच दी जाती थी। अन्य जमींदारों ने भी यह प्रथा अपनाई – इस प्रकार सामंती व्यवस्था के कई स्तर कायम होने की प्रक्रिया शुरू हुई।

धीरे-धीरे बंगाल की जनसंख्या में वृद्धि हुई। उपेक्षित जमींनों और जंगलों को भी खेतों में परिणत किया गया। दूसरी तरफ सरकार को दी जाने वाली रकम स्थिर थी। अतः जमींदारों की स्थिति में सुधार आया और अपने काश्तकारों के खर्चे पर वे शानो-शौकत की जिंदगी बसर करने लगे। 1859 में जाकर सरकार ने काश्तकारों के अधिकारों के संरक्षण का कुछ प्रयास किया। एक कानून पारित किया गया, जिससे पुराने काश्तकारों को सीमित संरक्षण प्राप्त हुआ। इन्हें दखल काश्तकार (Occupancy Tenants) कहा गया।

BHIC-134 (HINDI)_NEW SETTING.indd 72 24-03-2021 11:47:20

बोध प्रश्न-2

1) बंगाल में स्थाई बंदोबस्त लागू करने के पीछे क्या मंशा थी? किसानों की स्थिति पर इसका क्या प्रभाव पड़ा? उत्तर दीजिए।

....

....

....

2) राजस्व के ठेके की व्यवस्था पर लघु टिप्पणी लिखें।

....

....

....

6.6 वैकल्पिक व्यवस्थाओं का उदय

ब्रिटिश पदाधिकारियों ने भू-कर के निर्धारण और वसूली के अन्य तरीकों की खोज शुरू कर दी। मुनरों और रीड नामक दो पदाधिकारियों को 1792 में मद्रास क्षेत्र के नए जीते गए इलाकों में प्रशासन संभालने के लिए भेजा गया। जमींदारों से लगान वसूलने के बजाय वे सीधे गाँवों से भू-राजस्व वसूलने लगे। उन्होंने प्रत्येक गाँव के लिए एक राशि निर्धारित कर दी। उन्होंने सभी किसानों या रैयतों का अलग-अलग ब्यौरा प्राप्त करना शुरू किया और इस प्रकार रैयतवाड़ी व्यवस्था का जम्म हुआ। इस आरंभिक रैयतवाड़ी व्यवस्था में खेतों का आकलन किया जाता था और प्रत्येक खेत की एक राशि निर्धारित की जाती थी। जो किसान इस खेत पर खेती करना चाहता था, उसे निर्धारित राशि अदा करनी पड़ती थी। निर्धारित राशि न अदा करने की स्थिति में वह उस भूमि पर खेती नहीं कर सकता था। अगर उस भूमि पर खेती करने के लिए कोई किसान आगे नहीं आता हो, वह भूमि परती रह जाती थी, उस पर कोई खेती नहीं होती थी।

6.6.1 रैयतवाड़ी के तहत कर निर्धारण

आपने देखा कि कर निर्धारण या राजस्व तय करना अधिकारियों के लिए एक मुश्किल कार्य था। उसे प्रत्येक जिले और परगने के हजारों खेतों पर राजस्व निर्धारण करना पड़ता था। उसे यह सावधानी रखनी पड़ती थी कि सभी खेतों पर एक समान कर निर्धारण हो। अगर किसी खेत पर कम और किसी खेत पर ज्यादा राजस्व लगाया जाता, तो किसान महँगे खेतों को छोड़ सस्ते खेतों पर ही खेती करते और महँगे खेत परती हो जाते। उन पर कोई खेती नहीं करता।

किसी खेत के कर निर्धारण के लिए राजस्व पदाधिकारी को दो बातें ध्यान में रखनी होती थीं, पहली बात यह कि मिट्टी की उर्वरता कितनी होती है। यह पथरीली जमीन है या उपजाऊ, सिंचाई उपलब्ध है या नहीं आदि। दूसरे उसे यह भी ध्यान रखना पड़ता था कि खेत किस जगह स्थित है। इससे पता चलता है कि यह व्यवस्था सर्वेक्षण और वर्गीकरण पर आधारित थी। अतः सभी गाँवों में स्थित उर्वरक भूमि का राजस्व एक-सा था, इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता था कि खेत इस गाँव में है या उस गाँव में है। पर यह राशि कैसे निर्धारित की गयी?

मुनरो अक्सर खेत में हुए उपज का आकलन करते हुए कर का निर्धारण करता था। मसलन एक एकड़ में 2600 मन धान होता है। उसने कुल उपज का एक तिहाई या 2–5 वाँ हिस्सा सरकार के खाते में डाल दिया और इसका मूल्य निर्धारित कर दिया। इतनी ही राशि एक किसान सरकार को देता था। यह रैयतवाड़ी का सैद्धांतिक पक्ष है। व्यवहार में राजस्व का आकलन अनुमान पर आधारित होता था और इतनी ज्यादा राशि माँगी जाती थी कि किसान बहुत मुश्किल से वह राशि अदा कर पाता था और कभी-कभी तो इस राशि की वसूली मुश्किल हो जाती थी।

BHIC-134 (HINDI)_NEW SETTING.indd 73 24-03-2021 11:47:20

6.6.2 मद्रास में रैयतवाड़ी व्यवस्था लागू करना

भू-राजस्व संबंधी आरंभिक प्रयोगों के बाद मद्रास में 1820 तक रैयतवाड़ी व्यवस्था लागू कर दी गयी और इस व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिए मुनरों को मद्रास का गवर्नर नियुक्त किया गया। मुनरो ने इस व्यवस्था के पक्ष में कई तर्क दिए। उसने दावा किया कि यह मूलतः भारतीय भू-व्यवस्था है और भारतीय परिवेश के लिए उपयुक्त है। इसे लागू करने से अन्य व्यवस्थाओं की अपेक्षा अधिक कर की प्राप्ति हो सकती है। इसका कारण यह है कि राजस्व निर्धारण और वसूली में सरकार और किसान के बीच सीधा संबंध होगा। इसमें कोई जमींदार या बिचौलिया नहीं होगा। अतः किसान से प्राप्त पूरी राशि सरकारी खजाने में चली जाएगी। मद्रास सरकार की वित्तीय स्थिति कमजोर थी और उसके लिए यह व्यवस्था अनुकूल साबित होगी। अतः स्थाई बंदोबस्त की खामियों का लाभ उठाते हुए उसने अस्थाई रैयतवाड़ी बंदोबस्त लागू किया।

6.6.3 रैयतवाड़ी : सिद्धांत और व्यवहार

हमने मुनरो द्वारा विकसित रैयतवाड़ी व्यवस्था की रूपरेखा पर विचार किया। मुनरो ने इस व्यवस्था को अपने नियंत्राधीन जिलों में लागू किया था। हालांकि 1820 के बाद जो रैयतवाड़ी व्यवस्था मद्रास प्रेसिडेंसी के अधिकांश भागों में लागू की गयी, वह मुनरों की व्यवस्था से थोड़ा भिन्न थी। आपको याद होगा कि उसकी रैयतवाड़ी खेतों के आकलन पर आधारित थी और कोई भी किसान किसी भी खेत पर खेती करने के लिए स्वतंत्र था। और जैसा कि हमने देखा है कि इस व्यवस्था का कार्यान्वयन खेतों की माप और आकलन पर निर्भर था। यह माप और आकलन सरकार किया करती थी। लेकिन 1820 के बाद यह व्यवस्था उन इलाकों में भी स्थापित की गई जहाँ कोई सर्वेक्षण नहीं किया गया था। कोई यह नहीं जानता था कि एक किसान के पास कितनी जमीन है और उसमें क्या उपजाया जाता है। करों का निर्धारण मनमाने ढंग से, पहले से अदा किए जा रहे करों के आधार पर किया जाने लगा। इसे पूर्व उत्पादन पर आधारित (Put Out) आकलन कहा गया। इसमें भी सिद्धांततः रैयत को अपने चुनाव पर किसी खेत पर खेती करने की स्वतंत्रता दी गयी। लेकिन बहुत जल्द ही यह महसूस किया जाने लगा कि अगर यह स्वतंत्रता दी गयी, तो सरकार के राजस्व में कमी आ जाएगी। अतः सरकारी पदाधिकारी किसानों को उन खेतों पर काम करने के लिए दबाव डालने लगे, जिन पर वे काम नहीं करना चाहते थे, और उन्हें इसका राजस्व भी अदा करना पड़ता था। अब किसी खेत पर खेती करना किसानों की इच्छा पर निर्भर नहीं था, क्योंकि इससे राजस्व वसूल करने में असुविधा होती थी। अतः किसी किसान को खास खेती में काम करने के लिए मजबूर किया जाने लगा और राजस्व वसूली के लिए उन पर तरह-तरह के अत्याचार भी किए जाने लगे। इन अत्याचारों का 1854 में स्थापित मद्रास यातना आयोग ने फर्दाफाश किया। इसके बाद इस व्यवस्था में कुछ सुधार लाया गया। भूमि का वैज्ञानिक सर्वेक्षण किया गया। इससे कर का वास्तविक भार कम हुआ और राजस्व वसूली में अब किसी प्रकार के अत्याचार की जरूरत नहीं थी। हालांकि यह बदलाव 1860 के बाद आया।

6.6.4 बंबई में रैयतवाड़ी बंदोबस्त

बंबई प्रेसिडेंसी के अंतर्गत गुजरात में रैयतवाड़ी व्यवस्था की शुरुआत हुई। ब्रिटिश सरकार ने पहले वंशानुगत पदाधिकारियों (देसाई) और मुखिया (पटेल) के जरिए राजस्व वसूलना शुरू किया। इस तरीके से उन्हें मनचाही रकम नहीं प्राप्त हो रही थीं, अतः अंग्रेज 1813-14 से खुद सीधे किसानों से राजस्व वसूल करने लगे। अंग्रेजों ने 1818 में पेशवा राज्य को हस्तगत कर लिया। इसके बाद मुनरो के शिष्य एलफिस्टन के नेतृत्व में मद्रास में लागू रैयतवाड़ी व्यवस्था को यहाँ भी कार्यान्वित किया गया। मद्रास रैयतवाड़ी के दुर्गुण यहाँ भी जल्द ही प्रकट होने लगे। राजस्व वसूल करने वाले पदाधिकारियों के बीच अधिक से अधिक राजस्व बटोरने की होड़ मच गयी।

प्रिंगल नामक पदाधिकारी के निरीक्षण में भूमि का सर्वेक्षण और वर्गीकरण किया गया। यह सर्वेक्षण अंग्रेज अर्थशास्त्री रिकार्डो के ''लगान के सिद्धांत'' को आधार बनाकर किया जाना था। यह सिद्धांत भारतीय परिस्थिति से बिल्कुल मेल नहीं खाता था और प्रिंगल की गणना

BHIC-134 (HINDI)_NEW SETTING.indd 74 24-03-2021 11:47:20

खामियों से भरा थी, परिणामतः आकलन बहुत अधिक था। जब सरकार ने पुणे जिले में प्रिंगल द्वारा लगाए गए राजस्व वसूल करने की कोशिश की, तो अधिकांश किसानों ने अपनी जमीन छोड़ दी और हैदराबाद के निजाम के राज्य में चले गए। कुछ समय बाद इस आकलन को छोड़ दिया गया।

विंगेट और गोल्डस्मिथ नामक दो पदाधिकारियों ने एक नयी व्यवस्था सामने रखी। उन्होंने अपनी व्यवस्था में किसी सिद्धांत का समावेश नहीं किया, बल्कि कर निर्धारण उस दर पर करने की कोशिश की, जिसे नियमित रूप से अदा किया जा सके। खेत की मिट्टी और स्थान के आधार पर खेत का आकलन निर्धारण किया जाना था। इस व्यवस्था की शुरुआत 1836 में हुई और 1865 तक यह संपूर्ण दक्कन में छा गई। कृषि पर इसका अच्छा प्रभाव पड़ा और नए कर निर्धारण के साथ खेतिहर इलाकों में भी वृद्धि हुई।

6.6.5 मद्रास और बंबई में रैयतवाड़ी व्यवस्था के प्रभाव

हमने देखा कि किस प्रकार स्थाई बंदोबस्त में पूरे किसान वर्ग पर कुछ मुट्ठी भर जमींदारों का वर्चस्व स्थापित हो गया। रैयतवाड़ी व्यवस्था में सामाजिक प्रभाव का एक दूसरा रुख सामने आया। कई इलाकों में वास्तविक खेती करने वाले किसानों को दखलदार (occupants) या रैयत का दर्जा दिया गया और उनका अपनी जमीन पर दखल कायम हुआ। जैसा कि हमने पहले देखा कि राजस्व की दर ऊँची होने के कारण बहुत से किसान खुशी-खुशी अपनी जमीन छोड़ देते, उन्हें ऐसा करने से रोकना था। इसमें यह भी संभव था कि वास्तव में खेती न करने वाले लोग किसी जमीन के दखलदार या मालिक बन जाएँ:, और इस खेत पर उनके काश्तकार, नौकर यहाँ तक कि बंधुआ मजदूर खेती करें। ऐसी स्थिति खासकर तमिलनाडु के तंजौर जिले में थी जहाँ कई रैयतों के पास हजार-हजार एकड़ जमीन थी। रैयत जितनी जमीन चाहे अपने पास रख सकता था, जमीन रखने की कोई सीमा निर्धारित नहीं थी। अतः विभिन्न रैयतों की आर्थिक स्थिति और स्तर में काफी फर्क था। महाजन और अन्य गैर खेतिहर वर्ग जमीन हासिल करने के इच्छुक नहीं थे, क्योंकि राजस्व दर बहुत ऊँची थी। हालांकि राजस्व वसूल करने वाले पदाधिकारी किसानों को परेशान किया करते थे, पर किसानों को यह भय नहीं था कि महाजन या भूमिपति उसकी जमीन हड़प लेंगे। बंबई में 1836 के बाद और मद्रास में 1858 के बाद सुधरी रैयतवाड़ी व्यवस्था में भू-राजस्व का भार कुछ हल्का हुआ और जमीन की खरीद-फरोख्त शुरू हो गयी। अब खरीददार खेती से लाभ कमाने की सोच सकता था; क्योंकि अब राज्य सारा उत्पादन नहीं ले लेता था। इसका एक परिणाम यह हुआ कि महाजन अपने ऋणी किसानों की जमीनें हड़पने लगे, उनसे जमीनें छीनने लगे या उन्हें किसान से मजदूर बना दिया। इस प्रक्रिया में सामाजिक दबाव बढ़ा और 1875 में बंबई दक्कन में बड़ा ग्रामीण विद्रोह हुआ।

6.7 अन्य वैकल्पिक बंदोबस्त : महलवाड़ी व्यवस्था

1801 और 1806 के बीच लार्ड वेलेस्ली की विस्तारवादी नीति के कारण उत्तर भारत के अनेक हिस्से ब्रिटिश राज्य में मिला लिए गए। यह इलाका उत्तर-पश्चिमी प्रांत के रूप में जाना गया। आरंभ में अंग्रेजों ने बंगाल के नमूने पर यहाँ भी बंदोबस्त करने की योजना बनाई। वेलेस्ली ने अपने स्थानीय पदाधिकारियों को ऐसे जमींदारों की खोज करने के लिए कहा, जो काफी ऊँची दर पर राजस्व दे सकें। अगर कोई जमींदार न मिले तो गाँव-गाँव जाकर बंदोबस्त किया जा सकता था, और राजस्व अदायगी का काम मुकद्दम, प्रधान या गाँव के किसी प्रतिष्ठित रैयत को सौंपा जा सकता था। अंततः बंगाल की तरह स्थाई बंदोबस्त कायम करने की योजना थी।

इसके साथ-साथ राजस्व वसूली को बढ़ाने के हर संभव उपाय किए गए। 1803-04 में 188 लाख रुपए की माँग की गयी, यह माँग 1817-18 में बढ़कर 297 लाख रुपए हो गयी।

इस प्रकार की बढ़ोतरी का अधिकांश बड़े जमींदारों और राजाओं ने कड़ा विरोध किया। ये जमींदार और राजा पहले ही अपनी स्वतंत्रता लगभग खो चुके थे। अतः नए प्रशासन ने उनकी जमीनें छीन ली। पुराने जमींदार अंग्रेजों द्वारा माँगी गयी रकम का भुगतान न

कर सके और सरकार द्वारा उनकी संपदा बेच दी गयी। अतः अब सीधे गाँव के प्रधान और मुक्कदम के माध्यम से राजस्व वसूली अनिवार्य हो गयी। राजस्व संबंधी खातों में एक वित्तीय इकाई के लिए ''महल'' शब्द का उपयोग किया गया है, अतः गाँव आधारित कर निर्धारण को महलवाड़ी बंदोबस्त के रूप में जाना जाने लगा। इस व्यवस्था में एक व्यक्ति कई गाँवों का जिम्मा ले सकता था, इस प्रकार बड़े जमींदारों का उदय होने लगा। बंगाल के समान राजस्व वसूली में यहाँ भी अव्यवस्था आई। आरंम्भिक वर्षों में सरकारी पदाधिकारी अवैध तरीके से जमीनें अपने पास रख लेते थे। इसी समय सरकार को यह महसूस हुआ कि राजस्व वसूली में आमदनी से अधिक खर्च हो रहा है । इसके बाद स्थाई बंदोबस्त को समाप्त कर दिया गया।

6.7.1 महलवाड़ी : सिद्धांत और व्यवहार

1819 में एक अंग्रेज पदाधिकारी हॉल्ट मैकेंजी ने एक सिद्धांत सामने रखा कि ताल्लुकदार और जमींदार मूलतः राज्य द्वारा नियुक्त थे और वे उस गाँव के या उस ग्रामीण समुदाय के मालिक थे, जहाँ वे रहते थे। उसने तर्क दिया कि सर्वेक्षण में उनके अधिकारों और भुगतान की राशि का उल्लेख होना चाहिए। उसके ये विचार 1822 के अधिनियम-VII के रूप में संग्रहित हैं। इसके अनुसार यह जरूरी हो गया कि सरकारी पदाधिकारी जमींदारों, खेतिहरों आदि के अधिकारों को उल्लेख सर्वेक्षण में करें, साथ ही साथ इस बात का भी जिक्र करें कि किस खेत के लिए कितनी रकम निश्चित की गयी हैं। गवर्नर जनरल का आदेश इस प्रकार है : प्रत्येक गाँव में लगान की दरों, भुगतान के तरीके, प्रत्येक खेत की रकम का विस्तार से उल्लेख होना चाहिए, इसके अभाव में बंदोबस्त अपूर्ण माना जाएगा।

व्यावहारिक तौर पर इसे लागू करना असंभव सिद्ध हुआ। आकलन अपर्याप्त सिद्ध हुए और राजस्व वसूल करने वाले पदाधिकारियों ने सरकार के खजाने को भरने के लिए मनमाने ढ़ंग से अख्यितार किए। महलवाड़ी व्यवस्था ग्रामीण समुदाय का भला तो नहीं कर सकी, उसने असंभव कर निर्धारण द्वारा ग्रामीण अर्थव्यवस्था को खोखला बना दिया। 1833 में यह निर्णय लिया गया कि सभी अधिकारों और भुगतान को विस्तारपूर्वक दर्ज करने की नीति छोड़ी जाए और गाँवों द्वारा दी जाने वाली रकम का मोटा खाका बनाया जाए। बाद के वर्षों में काश्तकारों द्वारा जमीन के मालिकों को दी जाने वाली रकम के आधार पर राजस्व की राशि तय की गयी। इस रकम के आधार पर बंदोबस्त पदाधिकारी को पूरे गाँव या महल की जमीन से प्राप्त होने वाले राजस्व को निर्धारित करना था, इस राशि का कुछ हिस्सा अर्थात् 50 प्रतिशत सरकार को अदा करना था। ये सारे आकलन अनुमान पर आधारित थे और इसमें कोई संदेह नहीं है कि इस अनुमान के आधार पर दरें ऊँची रखी गयी ताकि सरकार को अधिक से अधिक राजस्व प्राप्त हो सके।

6.7.2 महलवाड़ी बंदोबस्त के प्रभाव

इस व्यवस्था का आरंभिक प्रभाव यह हुआ कि बड़े ताल्लुकदारों की संख्या में कमी आई। ब्रिटिश पदाधिकारियों ने जहाँ तक संभव हुआ, ग्रामीण जमींदारों से सीधा बंदोबस्त किया और अगर किसी ताल्लुकदार ने न्यायालय की शरण ली तो इन पदाधिकारियों ने वहाँ भी ग्रामीण जमींदारों का समर्थन किया। तथाकथित ग्रामीण जमींदारों का समर्थन इसलिए किया गया ताकि उनसे अधिक से अधिक राजस्व वसूला जा सके। वे ताल्लुकदारों से तो मुक्त हो गए पर सरकार के भारी कर के जाल में बुरी तरह फँस गए।

इसके परिणामस्वरूप ग्रामीण जमींदार उजड़ गए। एक पदाधिकारी ने अलीगढ़ की स्थिति का विवरण देते हुए लिखा है :

''जमा (भू-राजस्व) की दर काफी ऊँची है, ऐसे में मालगुजार राजस्वदाता अपनी स्थिति सुधारने की आशा छोड़ चुके हैं और भार को सहने में सक्षम नहीं है वे बुरी तरह ऋण के बोझ तले दबे हुए है, और बकाया राशि अदा करने की हालत में नहीं हैं।'' इसके परिणामस्वरूप खेत महाजनों और व्यापारियों के हाथ में जाने लगे, जिन्होंने खेत के पुराने मालिकों को किसान से मजदूर बना दिया। ऐसा ज्यादातर वाणिज्य प्रधान जिलों में हुआ, जहाँ राजस्व का निर्धारण काफी ऊँची दर पर किया गया था और जहाँ के भूमिपतियों को 1833 की मंदी के कारण काफी नुकसान उठाना पड़ा था। 1833 के बाद व्यापार ढह गया

था और निर्यात बिल्कुल मंदा हो गया था। 1840 के दशक में कई बार ऐसी स्थिति आती थी कि बकाया राशि वसूलने के लिए जमीन बेची जा रही होती थी और कोई खरीदार नहीं मिलता था। मद्रास प्रेसिडेंसी के समान इन इलाकों का कर भी इतना ऊँचा था कि कोई खरीददार मुनाफे की आशा नहीं कर सकता था। अतः महलवाड़ी व्यवस्था के कारण 1830 और 1840 के दशकों में उत्तर भारत में गरीबी और तबाही आयी और इसका प्रस्फुटन 1857 के लोकप्रिय विद्रोह के रूप में हुआ। इस वर्ष के दौरान पूरे उत्तर भारत में ग्रामीणों और ताल्लुकदारों ने सरकारी पदाधिकारियों को मार भगाया, न्यायालय, सरकारी आँकड़े और कागजात नष्ट कर दिए तथा नए खरीददारों को गाँवों से बाहर निकाल दिया।

बोध प्रश्न-3

1) रैयतवाड़ी व्यवस्था और स्थाई बंदोबस्त में क्या अंतर है? किन्हीं तीन का उल्लेख करें।

....

....

....

2) रैयतवाड़ी व्यवस्था महलवाड़ी व्यवस्था से किन बातों में अलग है? उत्तर दें।

....

....

....

3) ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर महलवाड़ी बंदोबस्त का क्या प्रभाव पड़ा? उत्तर दें।

....

....

....

6.8 सारांश

इस प्रकार हमने इस इकाई में देखा कि भारत में वाणिज्यीकरण कोई नयी चीज न थी। लेकिन प्रारंभिक अंग्रेज शासन के दौरान इसने जो स्वरूप ग्रहण किया वह निश्चय ही पहले के शासकों के शासन काल में विद्यमान स्वरूप से महत्वपूर्ण ढंग से भिन्न था, यह वाणिज्यीकरण एक व्यापारिक कंपनी के अधीन हुआ। इस कंपनी का मुख्यालय इंग्लैंड में स्थित था और उसके अधिकतर कर्मचारी भी वहीं से आते थे।

- इसलिए भारत से धन को भेजना या रूपांतरित करना ही उनका मुख्य उद्देश्य था।
- पश्चिम के बाजारों में जिन वस्तुओं की माँग थी उनके ही उत्पादन को संगठित करने का कार्य किया गया।
- कंपनी भारतीय वस्तुओं को कम से कम मूल्य पर खरीदना चाहती थी इसीलिए भारतीय उत्पादनकर्ताओं के दमन के साथ-साथ उनके विरुद्ध हिंसात्मक साधनों का प्रयोग भी किया। ऐसा ही करने की अनुमति बागानों के मालिकों एवं दूसरों को दी गई, जिससे कि भारतीय किसानों से कम से कम कीमत पर उत्पादन कराया जा सके।
- किसानों को अर्ध-गुलाम बनाकर इन फसलों का उत्पादन कराया गया जिससे कि उनको अधिक से अधिक मुनाफा हो। इस काम के लिए नकद मजदूरी पर मजदूरों को नहीं रखा गया।
- जहाँ एक ओर उत्पादन बाजारों का वाणिज्यीकरण हुआ वहीं दूसरी ओर भूमि बाजार एवं श्रम बाजार विकसित न हो सके।

BHIC-134 (HINDI)_NEW SETTING.indd 77 24-03-2021 11:47:20

इस प्रकार इस इकाई में हमने ब्रिटिश काल के दौरान उभरने वाली तीन प्रमुख भू-व्यवस्थाओं की जानकारी प्राप्त की। नए विजित इलाकों में अंग्रेजों ने महलवाड़ी या रैयतवाड़ी व्यवस्था कायम की। पंजाब में महलबाड़ी व्यवस्था लागू की गयी और केंद्रीय भारत में कुछ बदले हुए रूप में मालगुजारी व्यवस्था। 1857 के विद्रोह के बाद अवध के ताल्लुकदारों को जमीन का मालिक बना दिया गया ताकि भविष्य में होने वाले विद्रोहों में वे अंग्रेजों का साथ दे सकें। यहाँ भी महलवाड़ी बंदोबस्त कायम किया गया।

हमारे विचार-विमर्श से एक बात स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आई कि अंग्रेजों का मुख्य उद्देश्य अधिक से अधिक राजस्व वसूलना था। कभी-कभी इससे भूमि का बाजार निर्मित होता था, और भूमि वो खरीद-फरोख्त होती थी। पर साथ ही साथ राज्य द्वारा स्थापित ऊँची दर के कारण खरीददार भी मुश्किल से मिल पाते थे। भारत सरकार का खर्च बढ़ गया था और उसे लंदन भी राशि भेजनी होती थी, अतः ज्यादा से ज्यादा राजस्व वसूलने का प्रयत्न किया गया।

6.9 शब्दावली

निर्यात : वह व्यापारिक गतिविधि जिसमें एक देश की वस्तुएँ दूसरे देश में बेची जाती है।

कृषि में अस्थायीत्व : परम्परागत रूप से कृषि सूखे और बाढ़ जैसे खतरों से प्रभावित रहती है। कृषि बाजार के सूदूर बाजारों से संबंधित किए जाने से यह उस देश के मूल्यों के उतार-चढ़ाव से भी प्रभावित होने लगी। यदि किसी ओर देश में कपास के मूल्य गिरे तो भारत में भी कपास के मूल्य प्रभावित हुए। इससे कृषि बाजार में अस्थायीत्व आया।

6.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

1) भाग 6.1 देखें।
2) भाग 6.2 देखें।
3) भाग 6.3 देखें।

बोध प्रश्न-2

1) इस उत्तर में आप स्थाई बंदोबस्त लागू करने के पीछे अंग्रेजों के आर्थिक हितों का उल्लेख करें। उत्तर के दूसरे भाग में जमींदारों पर किसानों की बढ़ती निर्भरता और किसानों की दयनीय स्थिति पर प्रकाश डालें। उपभाग 6.5.1, 6.5.2 और 6.5.3 देखें।
2) भाग 6.4 देखें।

बोध प्रश्न-3

1) एक जमींदार के साथ, दूसरे में रैयतों के साथ बंदोबस्त किया गया। देखें भाग 6.5 और 6.6
2) देखें भाग 6.6 और 6.7
3) ग्रामीण अर्थव्यवस्था में महाजनों और व्यापारियों का बढ़ता प्रभाव और किसानों की तबाही आदि। देखें, उपभाग 6.7.2

BHIC-134 (HINDI)_NEW SETTING.indd 78 24-03-2021 11:47:20